International Journal of Education and Science Research
Review
E-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org April- 2015, Volume-2, Issue-2 Email- editor@ijesrr.org

शहरी एवं ग्रामीण बुजुर्गों की आर्थिक स्थित– एक अवलोकन

[1]डॉ0धर्मवीर महाजन, [2]प्रभावती
[1]शोध निर्देशक,[2]शोधार्थी समाजशास्त्र
सी0एम0जे0 विश्वविद्यालय
राय–भोई, जोरवाट, मेघालय

समाज की सभी अवस्थाओं में मानव भोजन, वस्त्र, निवास एवं सुरक्षा की आवश्यकता अनुभव करता है। समाज में आर्थिक क्रियायें और आवश्यकतायें मूलभूत होती हैं। मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति इच्छानुसार नहीं कर सकता है। समाज के सदस्य के रूप में व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति परम्पराओं, नियमों तथा कार्यप्रणालियों के अनुरूप ही करता है। संस्था का अर्थ है मान्य नियम और कार्य पद्धति से है। इस तरह आर्थिक क्रियाओं और आवश्यकताओं से सम्बन्धित परम्पराओं, नियम प्रणालियों और कार्य पद्धति को आर्थिक संस्था के रूप में स्वीकार किया जाता है।

आर्थिक आवश्यकताओं की प्रबन्ध आपूर्ति से सम्बन्धित कार्यों को मानव का आर्थिक पक्ष माना जाता है। आदिम, कृषक और औद्योगिक सभी समाजों में उत्पादन, वितरण, उपभोग, सम्पत्ति, श्रमविभाजन और उत्तराधिकार से सम्बन्धित परम्परायें नियम प्रणाली और कार्य–पद्धतियॉ पायी जाती हैं।

आदिमकालीन अर्थव्यवस्था– आदिम कालीन अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक पर्यावरण पर निर्भरता पायी जाती हैं। आर्थिक क्रियायें भौगोलिक परिस्थितियॉ जैसे– वर्षा, धूप, बाढ़ आदि पर निर्भर करती है। हर्षको दिवस और लोवी ने इसका विस्तार में विवेचन भी किया है। आदिम समाजों में आर्थिक क्रियायें और श्रम विभाजन की पद्धति काफी सरल थी। श्रम विभाजन आयु और लिंग पर आधारित था। व्यक्तिगत सम्पत्ति की धारणा अत्यन्त आरम्भिक अवस्था में थी। परिवार, नातेदारी, समूह और समुदाय उत्पादन के साधनों के स्वामी थे।

आदिम समाज अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आत्मनिर्भर था। अतः उसमें व्यापार की पद्धति का विकास नहीं हुआ था। इन समुदायों में भेंट देने की प्रथा एक ओर तो सामाजिक दायित्व के रूप में विकसित हुई और दूसरी ओर एक प्रकार से यह आदिम व्यापार का भी एक रूप था। आतिथ्य एक प्रकार की आर्थिक सेवा का अंग था। आखेट तथा खाद्य संकलन में जो कुछ भी बच सकता था उसने आदिम समाजों से निम्नलिखित प्रथायें विकसित हुई।

1. उपहार अथवा भेंट
2. आतिथ्य
3. मुफ्त उधार लेना
4. मुफ्त उधार देना
5. सामान्य उपयोग।

इन समुदायों में सम्पत्ति की तुलना में व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक सम्मान अधिक महत्वपूर्ण माना जाता था।

कृषि आधारित अर्थव्यवस्था–

आदिम समुदायों में धीरे–धीरे जंगली जानवरों तथा पौधों के स्थान पर मनुष्य ने जमीनों का उपयोग तथा पौधों को उगाने का ज्ञान विकसित किया। इस स्थिति में भी भूमि पूरे वंश, समूह अथवा समुदाय की सम्पत्ति थी। धीरे–धीरे व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा विकसित हुई। समुदाय में सभी लोग खेती के काम, घर बनाने, जंगल को काटने अथवा आखेट में एक दूसरे को सहयोग करते थे। पशुओं और पौधों के पालन तथा सामूहिक प्रयत्न से जंगल की सफाई के कारण कृषि व्यवस्था विकसित हुई। कृषि व्यवस्था के साथ हल का विकास हुआ। मानवीय श्रम के साथ–साथ पशुओं के श्रम का उपयोग करना भी मनुष्य ने सीखा। उपयोग से अधिक उत्पादन की शुरूआत हुई। इस अतिरिक्त उत्पादन के कारण एक परिवार अथवा एक समुदाय का दूसरे परिवारों और समुदायों से अपने अतिरिक्त उत्पादन का विनियम आरम्भ हुआ। विनियम के लिए बिचौलियों की प्रथा विकसित हुई। कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था की निम्नलिखित विशेषतायें थीं–

1. उत्पादन के मुख्य स्रोत के रूप में भूमि का उपयोग।
2. भूमि का सामुदायिक, पारिवारिक अथवा व्यक्तिगत स्वामित्व।
3. अतिरिक्त उत्पादन के लिए पारस्परिक विनियम की पद्धति का विकास।
4. नियमित हाटों का विकास।
5. स्थानीय व्यापार के केन्द्र के रूप में ग्रामीण बाजारों का विकास।
6. ग्रामों के मुखियों अथवा कई ग्रामों के सरदारों की प्रथा का विकास।

खेती, हस्तशिल्प, पूर्व औद्योगिक नगर और क्षेत्रीय एकीकरण के फलस्वरूप सामन्तवाद की नींव पड़ी। इस व्यवस्था में उत्पादन इकाई परिवार थी। भूमि उत्पादन का मुख्य स्रोत थी। सामन्तों के पास आर्थिक और राजनीतिक स्वामित्व दोनों थे। इस व्यवस्था में केन्द्रीय सत्ता नहीं थी। भूमि और सम्पत्ति के स्वामी ग्राम समुदायों और किसानों से रूपया और सेवायें प्राप्त करते थे। इसके बदले में वे आक्रमणकारियों तथा लुटेरों से ग्रामीण एवं किसानों की रक्षा करते थे। इस व्यवस्था में श्रम विभाजन का स्वरूप और भी विकसित हुआ।

उत्पादित वस्तुओं की विविधता बढ़ी। नगरों का विकास हुआ। इस सामन्त और स्वामियों के राजनीतिक प्रभाव क्षेत्रों से धीरे–धीरे आधुनिक राष्ट्र पर आधारित राज्यों का उदय हुआ। भूमि पर आधारित कृषि अर्थव्यवस्था में धातुओं का उपयोग आरम्भ हुआ। इसमें मुख्या धातुयें थीं–

1. तॉबा
2. चॉदी
3. सोना
4. लोहा आदि।

लकड़ी और लोहे के कारण पहिए पर चलने वाले रथों और बैलगाड़ियों का विकास हुआ। बैल, घोड़ों, ऊँटों एवं भैसों की शक्ति का उपयोग कृषि, यातायात और व्यापार आदि के लिए हुआ। विश्व के अनेक हिस्सों में हाथियों का भी उपयोग हुआ। उत्पादन और यातायात में पशुओं के उपयोग से आदमी के श्रम की बचत हुई।

सामाजिक संरचना के श्रम विभाजन के विकास के साथ सामन्त, कृषक, शिल्पी, कृषि श्रमिक अथवा दास वर्गों की उत्पत्ति हुई। कृषि के विस्तृत क्षेत्र, अतिरिक्त उत्पादन, हस्तशिल्प के विकास और राजनैतिक सत्ता के विस्तार के साथ व्यापारिक और पूर्व औद्योगिक नगरों की अर्थव्यवस्था विकसित हुई।

आदिम और कृषि पर आधारित दोनों अर्थव्यवस्था, भौगोलिक पर्यावरण पर निर्भर थी। दोनों में वस्तुओं एवं सेवाओं के विनियम के जरिए तथा जनरीतियों से होता था। कृषि पर आधारित व्यवस्था में भाषा, लिपि, सुगठिन धर्म तथा स्थायी ठिकानों का विकास हुआ। इस काल में गृह–निर्माण की पद्धति में काफी परिष्कार हुआ। बड़े भवन और किले बनाने की क्षमता विकसित हुई। संगीत के सुरों और वाद्यों का विकास हुआ। नृत्य और नाटक की कला विकसित हुई।

इस तरह कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था में सांस्कृतिक क्षेत्र में भी काफी परिष्कार आया। पाल वाली नावों के कारण समुद्रों को पार कर दूर के देशों से व्यापार की पद्धति इस काल में विकसित हुई। इस काल में आर्थिक क्रिया की एक अन्य महत्वपूर्ण विनियम के लिए मुद्रा का प्रचलन था।

औद्योगिक क्रान्ति–

कृषि, हस्तशिल्प, वाणिज्य में अतिरिक्त उत्पादन से हुए लाभ या सामन्ती राजनीतिक पद्धति द्वारा स्थापित शान्ति और व्यवस्था के चलते यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति की शुरूआत हुई। सामन्ती व्यवस्था में कृषि और शिल्प के औजार छोटे थे। इनमें मानवीय श्रम अधिक जमता था। उत्पादन में समय भी अधिक लगता था और उत्पादन की मात्रा सीमित होती थी।

औद्यागिक क्रान्ति और शुरूआत के मूल में मानव तथा पशु श्रम के स्थान पर यन्त्रों की शक्ति का उपयोग करते थे। औद्योगिक क्रान्ति के साथ विशाल यन्त्र, कोयला से उत्पादित भाप द्वारा संचालित होने लगे। भाप की जगह प्रायः एक सदी बाद बिजली ने ली। उत्पादन में यन्त्रों के बढ़ते प्रयोग के कारण उत्पादन यातायात और वितरण की प्रणाली में इतने व्यापक परिवर्तन हुए कि इस प्रक्रिया को औद्योगिक क्रान्ति कहा जाता है। औद्योगिक क्रान्ति ने आधुनिक अर्थव्यवस्था इसकी उत्पादन पद्धति, संगठनों और नए मानवीय सम्बन्धों को जन्म दिया था।

यहॉ एक प्रश्न विचारणीय है कि औद्योगिक क्रान्ति की शुरूआत इंग्लैण्ड और पश्चिमी यूरोप में ही क्यों हुई? इस प्रश्न का उत्तर कार्ल मार्क्स और मैक्स वेबर ने दिया है।

कार्ल मार्क्स के अनुसार, 'जर्जर सामन्ती समाज के पतन के साथ ही औद्योगिक पूँजीवादी व्यवस्था का अभ्युदय हुआ। इसके विकास के पीछे सामन्ती व्यवस्था के क्रान्तिकारी तत्वों के अतिरिक्त कुछ अन्य सामाजिक परिस्थितियॉ भी थीं। अमेरिका की खोज एवं अफ्रीका के दक्षिणी किनारे से होकर यातायात की शुरूआत ने उभरते हुए पूँजीपति वर्ग के लिए उद्योगों और बाजार के नए द्वार खोल दिए। भारत और चीन के बाजार अमेरिका का उपनिवेशीकरण, अन्य उपनिवेशी से व्यापार विनियम और वस्तुओं के उत्पादन के साधनों में वृद्धि ने वाणिज्य, नौ–परिवहन तथा उद्योग को ऐसी तेज गति से विकसित किया जो इतिहास में इसके पहले कभी नहीं हुआ था।

नए बाजारों की बढ़ती आवश्यकता की पूर्ति, श्रेणियों के चतुर्दिक संगठित सामन्ती उत्पादन प्रणाली के द्वारा सम्भव नहीं था। सामन्ती उत्पादन की पद्धति यन्त्रों पर आधारित उत्पादन की व्यवस्था के सम्मुख न टिक सकी। परिवार तथा श्रेणी पर आधारित श्रम विभाजन कारखानों के श्रम विभाजन के साथ ही लुप्त हो गया। भाप और यन्त्रों के कारण औद्योगिक उत्पादन में क्रान्तिकारी परिर्वतन हुआ। मार्क्स की मान्यता है कि अठारहवीं सदी में घटित इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति ने सम्पूर्ण विश्व को बाजार में बदल दिया। सामन्ती व्यवस्था को समाप्त कर पूँजीपति वर्ग के मार्क्स के अनुसार अत्यन्त क्रान्तिकारी भूमिका निभाई। इस व्यवस्था के अर्न्तनिहित दोष भी हैं। यह व्यवस्था मुक्त व्यापार और शोषण पर

आधारित है। इस व्यवस्था ने अब तक के अत्यन्त सम्मानित पेशेवरों जैसे–डॉक्टर्स, वकील, धर्म–पुरोहित, कृषि तथा वैज्ञानिकों को वेतन पाने वाले मजदूर में बदल दिया है। इसने उत्पादन के साधनों, उत्पादन के सम्बन्धों और फलस्वरूप समस्त सामाजिक सम्बन्धों को ही बदल दिया है।

मार्क्स के अनुसार उपनिवेशों के शोषण, यातायात की नई सुविधाओं, उद्योग और वाणिज्य के विकास तथा सामन्ती व्यवस्था के अर्न्तविरोध के कारण औद्योगिक पूँजीवादी व्यवस्था अठारहवीं सदी के मध्य के इंग्लैण्ड में विकसित होने लगी। इसके बाद तो, विश्व बाजार की लूट और उपनिवेशों के शोषण के चलते औद्योगिक विकास की इस प्रक्रिया को कोई अन्त ही नहीं था। यह व्यवस्था पूँजी और लाभ की भावना पर आधारित थी। इसे पूँजीवादी व्यवस्था कहते हैं। मार्क्स के मत के ठीक विपरीत मैक्स वेबर के अनुसार औद्योगिक व्यवस्था और पूँजीवादी प्रणाली विवेकशीलता, संचय की भूमिका एवं प्रवृत्ति, प्रतिस्पर्धा, कठिन श्रम, समय के मूल्य तथा कर्तव्य भावना पर आधारित हैं। पूँजीवाद की उपरोक्त वर्णित घटना के मूल में प्रोटेस्टैण्ट धर्म के आचारशास्त्र का हाथ है। प्रोटेस्टैण्ट धर्म अपने अनुयायियों को कर्तव्य द्वारा समय के मूल्य और बचत के नैतिक पक्ष की सीख देता है। अपने तर्क की पुष्टि में मैक्स वेबर का कहना है कि आरम्भिक उद्योगीकरण और पूँजीवाद का विकास प्रोटेस्टैण्ट धर्म के मानने वाले देशों इंग्लैण्ड और अमेरिका में हुआ। औद्योगिक क्रान्ति के बाद प्रौद्योगिकी, ऊर्जा तथा उत्पादन पद्धति में हुए व्यापक परिवर्तन ने आधुनिक आर्थिक व्यवस्था को जन्म दिया है।

औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था– उन्नीसवीं सदी के मध्य के बाद से औद्योगिक क्रान्ति के बाद उद्योगीकरण ने एक निश्चित व्यवस्था का रूप ले लिया है। प्रौद्योगिकी, उत्पादन तथा संगठन की दृष्टि से इसकी कुछ विशेषतायें हैं।

औद्योगीकरण पर आधारित अर्थव्यवस्था अत्यन्त जटिल है। इस व्यवस्था में मनुष्य पर्यावरण से नियमित और प्रभावित होने के स्थान पर पर्यावरण को यथाशक्ति नियमित करने की चेष्टा करता है। औद्योगिक अर्थव्यवस्था, विशेषीकरण, जटिल श्रम–विभाजन, बड़े पैमाने पर उत्पादन तथा विशाल यन्त्रों पर आधारित है। मूर का कथन है कि इस व्यवस्था में उत्पादन की इकाई के रूप में परिवार की भूमिका समाप्त हो गयी है। यन्त्रों का प्रभाव कारखानों तक सीमित नहीं रह गया है। बल्कि इसने खेती की पद्धति को भी प्रभावित किया है। इस तरह मनुष्य अपनी भौतिक परिस्थितियों पर आश्रित होने के स्थान पर प्रौद्योगिकी द्वारा निर्मित परिस्थितियों पर अधिक निर्भर होता जा रहा है। जनजातीय और कृषक समाजों में उत्पादन की पद्धति और मात्रा, वर्षा, धूप, भूमि की प्रकृति, उर्वरा शक्ति तथा मानवीय श्रम पर निर्भर करती थी। आधुनिक औद्योगिकी व्यवस्था तथा प्रौद्योगिकी ने मनुष्य और उसके पर्यावरण के सम्बन्ध को बदल दिया है। आधुनिक व्यवस्था के अर्न्तगत भाप, बिजली, आणविक शक्ति तथा इनके द्वारा संचालित प्रौद्योगिकी ने तापमान तथा वर्षा पर निर्भरता को काफी हद तक कम किया है। नए उपकरणों के कारण मानवीय श्रम में बचत हुई है और थोड़े समय में मनुष्य अधिक उत्पादन कर सकता है। इस तरह नए यन्त्रों ने पुरानी परिस्थितियों को न केवल बदल दिया है बल्कि नई परिस्थितियों को भी जन्म दिया है जिसके अर्न्तगत प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण के स्थान पर मानव निर्मित परिस्थितियों और पर्यावरण विकिसत हुए हैं।

आधुनिक प्रौद्योगिकी और मानव निर्मित परिस्थितियों ने उत्पादन की पद्धति और उसकी मात्रा में परिवर्तन के साथ ही उत्पादन के सम्बन्धों में परिवर्तन किया है। पुरानी सरल व्यवस्था के अर्न्तगत आर्थिक संगठन अत्यन्त सीमित था। परिवार ही भूमि तथा दस्तकारी के उपकरणों का स्वामी होता था। परिवार के लोग ही अपने श्रम से उत्पादन करते थे। अपने उत्पादन के साधनों जैसे– हल, बैल, करघा, भट्ठी, उत्पादित वस्तुओं जैसे– अनाज, कपड़ा, औजार आदि का प्रबन्ध परिवार ही करता था। उद्योगों के कारण अब वह एक नए रूप, नई विशेषताओं के साथ हमारे सामने उपस्थित हुआ है। औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था की निम्नांकित विशेषतायें हैं–

1. श्रम के स्थान पर पूँजी का महत्व
2. उत्पादन की इकाई के रूप में परिवार
3. मानवीय और पशुओं के श्रम के स्थान पर विशाल यन्त्रों का उपयोग
4. मानवीय तथा पशुश्रम पर आधारित ऊर्जा के स्थान पर भाप, बिजली तथा आणविक ऊर्जा का उत्पादन में उपभोग
5. जीविका के लिए किए गए उत्पादन के स्थान पर विनिमय और लाभ की भावना से किया गया उत्पादन
6. स्थानीय हाट और बाजार के स्थान पर विश्व बाजार का उदय
7. सहयोग के स्थान पर प्रतिस्पर्द्धा
8. यातायात तथा संचार की समुन्नत साधन
9. वेतन पर आधारित श्रमिक और पेशेवर वर्ग
10. मुद्रा पर आधारित अर्थव्यवस्था
11. विशाल कम्पनियों तथा निगमों का जन्म
12. उद्योगपतियों के स्थान पर प्रबन्धकों द्वारा उद्योगों का संचालन
13. ग्रामीण समुदायों एवं कृषक व्यवस्था के स्थान पर नगरों और प्रौद्योगिकी पर आधारित अर्थव्यवस्था
14. अत्यन्त जटिल श्रम–विभाजन की पद्धति।

आधुनिक औद्योगिकी व्यवस्था में कम्पनी, निगम, शेयर बाजार, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, बैंक, उद्योगपतियों तथा श्रमिकों के संघ आदि को जन्म दिया है। समाजशास्त्री इन विशाल आर्थिक समूहों को औपचारिक संगठन कहते हैं। ये आर्थिक संगठन नियम, प्रणाली, अवैयक्तिक राज्य तथा आर्थिक हित की पूर्ति की भावना पर आधारित हैं। इन आर्थिक संगठनों की निम्नांकित विशेषतायें हैं–

1. इनकी सदस्यता निश्चित नियमों पर आधारित होती है। एक निश्चित अवधि के बाद इनके पदाधिकारियों का चुनाव होता है।
2. इनके सदस्यों की संख्या कभी–कभी इतनी अधिक होती है और इनका आकार इतना बड़ा होता है कि सदस्यों के बीच व्यक्तिगत और प्रत्यक्ष सम्पर्क का अभाव पाया जाता है।
3. ये संगठन उत्पादन, वितरण अथवा विनियम के निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सोच समझकर बनाए जाते हैं।
4. इनके आकार की विशालता तथा निश्चित उद्देश्यों के कारण इनके सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध भावना के स्थान पर औपचारिक और विधि सम्मत नियमों पर आधारित होते हैं।
5. इन संगठनों के सदस्यों के बीच निश्चित अवधि के बाद होने वाली बैठकों, परिपत्रों और समाचार पत्रों आदि के द्वारा सम्पर्क स्थापित होता है।

वृद्धजनों की आर्थिक निर्भरता–

वृद्धजनों की संख्या और कुल जनसंख्या के मुकाबले उनके अनुपात में वृद्धि का एक खतरनाक परिणाम यह भी हो रहा है कि उनकी सामाजिक निर्भरता बड़ी तेजी से बढ़ रही है। इस स्थिति को समाजशास्त्रीय शब्दावली में वृद्धावस्था निर्भरता अनुपात कहा जाता है। इसका अभिप्राय है कि 15 से 59 वर्ष तक के कामकाजी लोगों पर 60 वर्ष या उससे अधिक उम्र के लोगों की निर्भरता का अनुपात।

वृद्धावस्था निर्भरता का मुख्य कारण यह है कि वृद्धजन शारीरिक दुर्बलता के साथ–साथ आर्थिक रूप से भी पराश्रित हो जाते हैं। अधिकतर बड़े–बूढ़े नौकरी और व्यावसाय आदि से निवृत्त हो जाते हैं तथा उनके बच्चे काम धन्धा सम्भाल लेते हैं। बड़ी संख्या में वृद्धजन पहले की तरह सक्रियता के साथ काम कर पाने में असमर्थ हो जाते हैं। ग्रामीण लोगों विशेषकर महिलाओं में निरक्षरता की दर ऊँची होने के कारण भी बड़ी उम्र के लोग कोई सन्तोषजनक और सम्मानजनक तथा अपनी शारीरिक क्षमता के उपयुक्त रोजगार नहीं पा सकते। नौकरी से मुक्त होने वाले व्यक्ति अवश्य अपने पास थोड़ा बहुत पैसा बचाकर कुछ बेहतर स्थिति में रह सकते हैं। किन्तु इनमें भी जो लोग अपनी जमा पूँजी बच्चों की शिक्षा विवाह या मकान आदि पर लगा देते हैं उनकी निर्भरता बनी रहती है। रोजगार और काम धन्धा न होने पर प्रभाव उनकी मानसिक स्थिति पर भी पड़ता है। आर्थिक परनिर्भरता से उनके आत्मसम्मान को चोट पहुँचती है और वे हीनभावना से ग्रस्त रहते हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि वृद्धजनों को हताशा, हीनभावना, अकेलेपन की चिन्ता तथा आर्थिक परनिर्भरता के दुष्प्रभाव से बचाना है तो उनके लिए छोटे मोटे काम धन्धे चलाने पर ध्यान देना होगा। इससे वे व्यस्त भी रहेंगे और अपने आत्मसम्मान की भी रक्षा कर सकेंगे। वास्तव में काम में व्यस्तता वृद्धजनों के लिए मानसिक और शारीरिक दोनों तरह से उपयोगी है। काम में लगे रहने से मानसिक तनाव में कमी आती है और उनकी शैक्षिक सक्रियता भी कायम रहती है। इससे एक और महत्वपूर्ण लाभ यह होता है कि उनके अनुभव और ज्ञान को समाज की भलाई के लिए सदुपयोग किया जा सकता है।

वृद्ध व्यक्तियों को विभिन्न काम धन्धों का प्रशिक्षण देने के कार्यक्रम भी लाए जा रहे हैं। इनमें लिफाफे बनाना, मुर्गी पालन, दरी बुनना, दुधारू पशु पालन, सब्जी उगाना जैसे काम शामिल हैं। इसके आधार पर वृद्धों की समस्याओं, दुर्बलताओं तथा विवशताओं को समझकर सहानुभूति के साथ उनसे निपटना भी है और अपने जीवन में आने वाली वृद्धावस्था को सुखी और कष्ट रहित बनाने की तैयारी भी करनी है। अब वह समय चला गया जब व्यवस्था की समस्या एक व्यक्ति या ज्यादा से ज्यादा परिवार तक सीमित थी। आज यह समस्या सामाजिक और राष्ट्रीय सीमाओं को लांघकर समूचे विश्व की समस्या बन चुकी है। अतः इससे निपटने के प्रयास भी व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर करने होंगे।

सन्दर्भग्रन्थ–

1. तिवारी, आर0एस0, 'एडल्ट एजुकेशन प्रोग्राम– सम कॉम्प्रिहैन्सन्स', अक्टूबर–2008।
2. थेकमालाई, एस0एस0 'दि विपेज कम्यूनिटी एण्ड द वैल्यूज ऑफ कम्यूनिटी डैवलपमेन्ट प्रोग्राम', वोल्यन्ट्र डैवलपमेन्ट। नवम्बर–2012।
3. मैथ्यू, के0एम0, 'डैवलपिंग रूरल इण्डिया', मनोरमा ईयर बुक–2007।
4. स्वामीनाथन, एम0 एस0, 'वीमैन एण्ड रूरल डैवलपमेन्ट मेनस्ट्रीम एनुअल' नवम्बर–2012।
5. देसाई, ए0आर0, 'रूरल सोशियोलॉजी इन इण्डिया', बम्बई–2016।